ABS

आधुनिक हिंदी कविता के विविध आयाम

- जनवादी कविता
- भूमंडलीकरण की कविता

संपादक : डॉ. अनिल पाटील
प्रा. सुधाकर इंडी

Scanned by CamScanner

प्रकाशक
ए.बी.एस. पब्लिकेशन
आशापुर, सारनाथ
वाराणसी-221 007 (उ०प्र०)
मो० 09450540654, 08669132434

✶

ISBN : 978-93-86077-89-9

✶

© संपादक

✶

प्रथम संस्करण : 2019

✶

मूल्य : 1200/-

✶

शब्द संयोजन :
रुद्र ग्राफिक्स

✶

मुद्रक :
पूजा प्रिण्टर्स
बसंत विहार, नौबस्ता

Aadhunik Hindi Kavita Ke Vividh Ayaam
***Editer* : Dr. Anil Patil, Prof. Sudhakar Indi**
Price : One Thousand Two Hundred Only.

Scanned by CamScanner

7. भूमण्डलीकरण की कविता 400
डॉ. बलवंत जेऊरकर
8. भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी कविता 403
डॉ. अनिता एस. कर्पूर
9. कवि राजेश जोशी के काव्य में व्याप्त भूमंडलीकरण 408
प्रा. कृष्णात खांडेकर
10. भूमंडलीकरण की कविता 413
प्रा. डॉ. जी. के. किर्दत
11. आधुनिक हिंदी कविता में भूमंडलीकरण और पर्यावरण का अंतःसंबंध 418
डॉ. मिनाक्षी विनायक कुरणे
12. भूमंडलीकरण, बाजारवाद और हिंदी कविता 424
प्रा. डॉ. विनायक बापू कुरणे
13. भूमंडलीकरण की हिंदी कविता 429
प्रा. डॉ. सौ. शैलजा रमेश पाटील
14. भूमण्डलीकरण की कविता : विविध आयाम 435
डॉ. कल्पना किरण पाटोळे
15. भूमंडलीकरण की कविता के प्रमुख स्वर 441
डॉ. सौ. शोभा एम. पवार
16. भूमंडलीकरण का प्रभाव हिंदी कविता में 445
सौ. सुपर्णा संसुद्धी
17. ललमुनिया की दुनिया' में चित्रित भूमंडलीकरण की समस्याओं का चित्रण 448
प्रा. विश्वनाथ भालचंद्र सुतार
18. दिनकर कुमार की कविताओं में भूमण्डलीकरण 453
श्वेता प्रदीप आंब्रे
19. भूमंडलीकरण और हिंदी कविता 455
सुषमा मारूती चौगुले
20. हिंदी काव्य और भूमण्डलीकरण 461
कु. बिसमिल्ला बाबासाहेब मुल्ला
21. हिंदी साहित्य और कविता में भूमंडलीकरण 463
जब्बारखान मियाखान मोकाशी
22. समकालीन कविताओं में 'बाजारवाद' 468
संतोष शंकर साळुंखे

Scanned by CamScanner

10

भूमंडलीकरण की कविता

प्रा. डॉ. जी. के. किर्दत

अंग्रेजी के 'ग्लोबलाइजेशन' (Globalization) शब्द प्रचलित है। इसके लिए 'वैश्वीकरण' शब्द भी प्रयुक्त होता है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में यह शब्द व्यापक रूप में प्रयुक्त हो गया। 'वसुधैव कुटुंबकम' का नारा लगाकर पूँजीवादी देशों ने साम्राज्य विस्तार हेतु बाजारवाद को बढ़ावा दिया है। जिसमे पूँजीपति देशों का आर्थिक सांस्कृति, बौध्दिक एवं सुरक्षात्मक अधिपत्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसने विकसनशील एवं पिछड़े देशों को सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परंपरा को प्रभावित किया है।

भूमंडलीकरण के प्रारंभ में यह भ्रम पैदा किया था कि इस व्यवस्था में दुनिया के लोग अपने–अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर पूरे संसार के मंगल के लिए जुड जायेंगे किंतु वर्तमान समय की परिस्थितियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण का निहितार्थ इससे ठीक उलटा है। यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूँजीवदी प्रतिष्ठानों, यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उसके सर्केदण का कार्य कर रही हैं। भूमंडलीकरण के नाम पर अब साम्राज्यवादी व्यवस्था और उसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को सभी पर लादने का प्रयास हो रहा है, जिससे गाँवो की मूल पहचान मिटती जा रही है। इसी बातपर चिंता व्यक्त करते हुए रामदरश मिश्रजी 'विश्वग्राम' कविता में लिखते हैं....

"विश्वग्राम/कितना अच्छा लगा था यह शब्द
एक संगीत–सा गूँज उठा था मन में
वाह, कितनी सदियों के बाद
हमारा 'वसुधैव कुटुंबकम' रूप ले रहा है
अब देश तो क्या
पूरा विश्व एक गाँव में परिणत हो रहा है।" [1]

जो आशाएँ एवं आकांक्षाएँ विश्वग्राम के नारे से पल्लवित हुई थीं वह टूट कर चूर हो गयी। धीरे–धीरे भेद खुलता गया और समझ में आने लगा कि

Scanned by CamScanner

विश्वग्राम का मोहक महल ग्राम–संवेदना पर नहीं, बाजारवाद पर खड़ा है। इसलिए कवि कहते हैं–

"हाँ विश्व एक हो रहा है लेकिन बाजार के रूप में
यहाँ बाजार की एकरूपता है
इस गाँव में
तमाम गाँवों को अपनी–अपनी जमीन की महक नहीं है
उनके अपने–अपने रंग नहीं हैं
यहाँ आदमी का अपनी जडों से स्पंदित लगाव नहीं है
यहाँ आदमी–आदमी नहीं, महज क्रेता–विक्रेता है
और संवेदनाएँ सामानों मे बदल रही हैं।" [2]

स्पष्ट है कि "विश्वग्राम" की संकल्पना मात्र एक भ्रम है जिसमें सिर्फ संसार का एक संपन्न वर्ग हि अपने व्यापारिक या व्यवसायिक हितों के लिए एक–दूसरों से जुडता है।

वैश्वीकरण के बहाने हमारी उदात्त सांस्कृतिक विविधता की विरासत को खत्म करने कि साजिश है। हमारी भाषाओं, जीवन पध्दति और खानपान पर भी इसका सीधा और बुरा असर पड़ना शुरू हो चुका है। मंगलेश डबराल 'भूमंडलीकरण' कविता में लिखते हैं –

"बड़ी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बड़ा गाँव
लोभ क्रोध ईर्ष्या द्वेष के लिए अब कहीं और नहीं जाना पड़ता
मनुष्य के संबंध बहुत पतले तारों से बांध दिये गये हैं
जो बात–बात में टूट जाते हैं
उन्हें जोड़ने के लिए फिर से जाना होता है बाजार
जहाँ तमाम स्वादिष्ट चीजें एक बेस्वाद जीवन को घेरे हुए हैं।" [3]

इन प्रभावों के कारण पूरा का पूरा संवेदनशील प्रबुध्द समाज बेबस और बेचैन है। पूँजीवाद के कारण क्षेत्रीय विषमताएँ उभर रहीं हैं। छोटी खेती और किसानों का अस्तित्व समाप्त हो रहा है। प्रदेश की आंचलिक विशेषताएँ नष्ट हो रहीं है। इस बात पर चिंता व्यक्त करते हूए चंद्रकांत देवाताले अपनी 'कैसा पानी कैसी हवा– इस कविता में लिखते हैं...

"कारखाने जरूरी हैं
कोई अफसोस नहीं
आदमी आकाश में सड़के बनाएं
कोई दिक्कत नहीं
पर वह शैतान
उसके नाखून .....भयानक जबड़े
वह शहरों–गाँवों पर मंडरा रहा है

Scanned by CamScanner

और हमारी परोपकारी संस्थाएँ
हर घर से उसके लिए
जीवित मांस की व्यवस्था कर रही हैं।" [4]

भूमंडलीकरण इस परिघटना को आकार देने में संचारक्रांति की प्रमुख भूमिका है।मीडिया के सारे साधन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में हैं और उन्हीं के लिए हैं। इसलिए मीडिया भूमंडलीकरण को महिमा मंडित करने में लगी है। विज्ञापन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं। लीलाधर जगूडीकी 'विज्ञापन सुंदरी' कविता इसका बयान करती है–

'कंपनियों कि कठपुतलियाँ विज्ञापन सुंदरियाँ
एक अकर्मण्य–सा परिधान बेचती है।
एक अस्वीकार्य–सा वस्त्र स्वीकार्य करवाती हैं
कम लंबाईवालों के बीच ज्यादा लंबी–लंबी बेजोड स्त्रियाँ
जिनमें बौध्दिक सौंदर्य कि तलाश उन्हें अबौध्दिक मान लेने से हुई है
ये स्वतः स्फूर्त सौंदर्य की धनी भरोसे की स्त्रियाँ नहीं हैं।" [5]

यह तो बाजार है जहाँ चिजें विज्ञापन सुंदरियों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। हमें जरूरतों का शिकार बनाया जाता है। पसीने से बचने के हजार उपाय करते हुए जीना और फिर पसीना निकालने के लिए महँगी मशीन पर व्यायाम करना अपव्यय नहीं बल्कि व्ययशक्ति और क्रयशक्ति का मामला है। वायुशक्ति में साँस लेते लेते क्षीण होती हुई आयुशक्ति उस विज्ञापन सुंदरी की भी समस्या है क्योंकि वह तो महज कंपनियों के हाथ की कठपुतलियाँ हैं जिनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है।

वैश्विक योजना के कर्ता–धर्ताओं ने अलग–अलग संस्कृतियों के बीच परस्पर संवाद बनाएँ रखने का नाटक रचा है किंतु वास्तविकता तो यह है कि एक बड़ा प्रभावशाली सांस्कृतिक समुदाय दुनिया की छोटी–छोटी संस्कृतियों को नष्ट कर रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना कारोबार फैलाने के लिए राष्ट्रीय सीमाओं, कानूनों, नियमों, बंधनों और मर्यादाओं को तोड़ रही हैं।

आज स्थिति यह है कि एक भूमंडलीय कार्पोरेट उद्यम ने सारी दुनिया को दो हिस्सों में बांट दिया है। एक दुनिया का वह हिस्सा है जो भूमंडलीकृत हो चुका है और दूसरी तरफ वह है जो इस प्रक्रिया से बाहर रह गया है। भूमंडलीकृत हिस्सा उत्तरोत्तर प्रौद्योगिकीय समाधानों, वित्तीय सट्टेबाजियों, उसके भीतर अंतरराष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग, स्थानीय स्तर के भ्रष्टाचार और अपराधीकरण के बीच फूल–फल रहा है। दूसरी और आम जनता है, जिसके पास क्रय शक्ति का अभाव है। इसी बात का संकेत करते हुए मंगलेश डबराल 'ताकत की दुनिया' में कहते हैं–

"ताकत की दुनिया में जाकर मैं क्या करूँगा
मैं सैंकड़ों–हजारों जूते–चप्पल लेकर क्या करूँगा

Scanned by CamScanner

मेरे लिए एक जोड़ी जूते ही ठीक से रखने कठिन हैं
हजारो–लाखों कपड़ों, मोजों, दस्तानों का मैं क्या करूँगा
मैं इतने सारे कमरों का क्या करूँगा
यह दुनिया घर है कोई होटल नहीं" [6]

इससे स्पष्ट होतो है कि वैश्वीकरण ने दुनिया को दो भागों में बाँटा है– अमीर देश और गरीब देश। यह शुद्ध रूप से बाजारवाद है जिसे उदारीकरण के मोहक शब्दजाल में बाँधा गया है।

सच्चाई तो यह है कि वर्तमान में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नाम पर कृषि भूमि को कौड़ी मोल पर किसानों से छीना जा रहा है। परिणामस्वरूप किसान आत्महताएँ करने पर विवश हैं। कृषि भूमि पर विदेशी उद्योग, विशाल मॉल बहुमंजिली इमारतें बन रहीं हैं और कृषि भूमि सिमटती जा रही है। भारत जैसे देश में यह सबसे घातक, संवेदनहीन और उव्देलित करने वाली बात है। कुलजीत सिंह की 'बाजार जानता है' कविता इस सच्चाई को उजागर करती है–

"वह सबको मनचाहा खरीदने की
शक्ति तो नहीं देता
पर मुक्ति देता है–
भूख और कर्ज से त्रस्त जनों को आत्महत्या की
आदमी को कुत्तों की तरह झगड़ने–निपटने की
चूहों और घोड़ों की तरह दौड़ने या दौड़ाए जाने की
औरत को अपनी देह और बच्चे बेचने की" [7]

बाजारवाद बाजार की ताक्रिक परिणति है। बाजार में हम किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर जाते हैं किंतु बाजारवाद आपका पीछा करता है। आपकी असुविधा का ध्यान किए बिना वह आपके घर में घुस आता है।

एक जमाना था जब गाँव में सप्ताह में एक ही बार बाजार लगता था, जिसका लोग बेसब्री से इंतजार करते थे जिसमें दाल–चावल, नमक–तेल, साग–सब्जी, कपड़े–लत्ते और औरतों के सिंगार के देशी सामान को खरीदा जाता था। आज बाजार की अवश्यकताओं के दायरे बढ़ाए गए हैं। उपनिवेश के माध्यम से बाजार का रंगीन माया जाल फैलाया जा रहा है। इसीलिए जरूरत न होने पर भी वस्तुएँ जरूरी बनती जा रहीं हैं। जया जादवानी 'बाजार' कविता के माध्यम से इस सच्चाई को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं–

"कैसे जान जाते हैं वे
हमारी जरूरतें
कहे बिना हमारे
प्रेस करने की टेबल, कपड़े धोने के दो हाथ
चमड़ी चमकाने के कारगर नुस्खे
बच्चों के अजीबोगरीब खिलौने

Scanned by CamScanner

उन्हें खिलाने–पिलाने–सुलाने के ताम–झाम
गद्दे–तकिए, पलंग–सोफे
इतना तो खुद हमें नहीं पता हमें चाहिए क्या–क्या"?

सारांशतः कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण के बहाने हमारी उदात्त सांस्कृतिक विविधता की विरासत को खत्म करने की साजिश की जा रही है। विश्व के राजनीतिक, सामाजिक, वैचारिक, सांस्कृतिक, व्यवहारिक आदि पहलुओं को भूमंडलीकरण ने प्रभावित किया है। इन प्रभाओं के कारण पूरा का पूरा संवेदनशील समाज बेबस और बेचैन है। सहज और व्यवहारिकता के नाम पर मूल भाषा में मिलावटी भाषा का सृजन हो रहा है। भाषा के स्तर पर संचार के माध्यम एवं साहित्यपर इसका काफी असर होता हुआ दिखाई देता है। भाषा के विस्थापन के द्वारा संस्कृति का विस्थापन भी अनिवार्य रूप से हो रहा है। असंवेदनशीलता, मुक्त–यौनाचार, उद्दाम संगीत, अश्लील साहित्य, पूँजीवाद, आत्मकेंद्रीतता इन नये मूल्यों को बाजारवाद ने प्रस्थापित किया है।

संदर्भ

1. समकालीन भारतीय साहित्य–सं.–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अंक–156, जुलाई–अगस्त 2011, पृ. 91
2. वही – पृ. 94
3. वही – पृ. 28
4. वही – पृ. 25
5. वही – पृ. 27
6. वही – पृ. 189
7. वही – पृ. 112

यशवंतराव चव्हाण कला व वाणिज्य महाविद्यालय,
इस्लामपुर

Scanned by CamScanner